ब्राह्मण कौन ?

बिहार के भोजपुर जिले के सहार–संदेश पथ पर भगवान नीलकंठ का एक मंदिर अवस्थित है। और, इस देश के करोड़ों लोग न जाने कितने हजार वर्षों से यह मानते चले आ रहे हैं कि श्रावण मास, में गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करने पर परमधाम की प्राप्ति होती है। समस्त दुखों–पीड़ाओं का विलय होकर, अनंत–अखंड आनंद की उपलब्धि होती है। इसीलिए, भोजपुर जिले के पुफलारी गांव में विगत श्रावण की सोमवारी 11 अगस्त, 97 के दिन भगवान् नीलकंठ का अभिषेक करने के लिए कुछ युवक मंदिर गए जिनमें चार दलित युवक भी शामिल थे। ये दलित युवा, अन्य लोगों के साथ कांवर लेकर बबुरा गये थे तथा गंगा स्नान कर, गंगाजल के साथ, मंदिर तक पहुंचे थे। इन्हें मंदिर के पुजारी ने रोक दिया और कहा कि बाबू लोगों के आदेश के बाद ही दलित युवक मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं। यहां तक कहा गया कि उनके द्वारा बबुरा से कांवर पर लाया गया पवित्र गंगाजल भी बाबू लोगों के आदेश के बाद ही, भगवान शिव को अर्पित किया जाएगा। वह गंगाजल, जिसे यह देश न जाने कितने हजार सालों से त्रौलोक्य को पवित्रा करनेवाला जल मानता आया है – उसे भी, दलित युवाओं के स्पर्श के कारण भगवान् शिव को अर्पित नहीं करने देने की हिमाकत की गयी।

इसके बाद जनाआक्रोश का भड़कना स्वाभाविक था। फलतः दलितों के साथ, गैरकानूनी घोषित सामाजिक भेदभाव व छुआछूत की यह घृणित हिमाकत करनेवालों पर स्थानीय पुलिस द्वारा कानूनी कार्रवाई की गयी। और, बिहार के एक दलित नेता ने दलितों के साथ मंदिर प्रवेश की घोषणा की।

भारतीय राष्ट्र की राजनीतिक स्वतंत्राता के पचास वर्ष बीतने के पूर्व ही दलितों के सर्वाधिक पूज्य व निर्विवाद तथा संपूर्ण देश के एक सम्मानित नेता बाबा साहब भीमराव अंबेडकर की प्रतिमाओं को अपमानित करने और बिहार में दलित शिवभक्तफों को शिव–मंदिर में प्रवेश न करने देने की घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्र का निर्माण करनेवाले एक महत्त्वपूर्ण एवं ताकतवर अंश को, आज भी दबाए रखने की तथा उसकी मानवीय आत्म–गरिमा को

आहत करने की कोशिश की जा रही है। मगर, इन घटनाओं के प्रति आम जन की व्यापक संवेदनशीलता पर गौर करें, तो इन घटनाओं का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इक्कीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक, दलित महाजागरण का मुखर साक्षी बनने जा रहा है।

प्राचीन–भारतीय–समाज–वैज्ञानिकों ने समाज के ऐतिहासिक विकास को चार खंडों में बांटा है– सत्ययुग, त्रोता, द्वापर और कलियुग। सत्युग कानून सम्मत आचरण और धर्मिकता का युग है। यह माना गया है कि सत्ययुग में प्रत्येक नागरिक, कानून एवं अन्य सामाजिक नियमों का, स्वाभाविक अंतःप्रेरणा के कारण पालन करता है। परिणामतः राजा, राज्य, दंड देनेवाले तथा दंड पानेवाले का अस्तित्व इस युग में नहीं होता। सभी नागरिक संविधन–सम्मत आचरण स्वाभाविक रूप से करते हैं। कार्ल मार्क्स के कम्युनिस्ट समाज की अवधारणा में इसी विकसित सामाजिक अवस्था का क्षीण प्रतिबिंब दिखाई देता है। मार्क्स ने ऐतिहासिक–द्वंद्ववाद की चरम परिणति राज्यविहीन समाज व्यवस्था को माना है। वे कहते हैं कि कम्युनिस्ट समाज, ऐसा समाज होगा, जिसमें प्रत्येक नागरिक स्वभावतः नियमों का पालन करेगा और इस कारण ऐसे समाज में राज्य की आवश्यकता नहीं होगी। राज्य स्वतः विलुप्त हो जाएगा।

इस सत्ययुग के बाद, त्रोता युग होगा, जिसके एक चौथाई नागरिकों में कानून तोड़ने अर्थात् धर्म–विरूद्ध आचरण करने की प्रवृत्तियाँ पैदा होंगी। तब समाज को शुद्ध और शांतिमय बनाए रखने के लिए राज्य की आवश्यकता होगी और तभी समाज में भिन्न–भिन्न नागरिक वर्गों का स्वाभाविक गठन प्रारंभ हो जाएगा। ये वर्ग समाज–व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए चिंतन प्रारंभ करेंगे।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता में एक कथा है। सत्ययुग व्यतीत हो जाने के बाद मनुष्यों में नियम विरुद्ध आचरण के कारण रोगों का जन्म हुआ। चूंकि पहले समाज के सभी मनुष्य–नीरोग थे, इसलिए इस सामाजिक संकट के समाधान के लिए हिमालय के तराई क्षेत्रा में प्रकृति–विशेषज्ञों, सामाजिक चिंतकों–अंगिरा, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्रा, सांकृत्य व देवल आदि– द्वारा एक महासभा का आयोजन किया गया। उसमें यह निर्णय किया गया कि मनुष्यों के लिए ऐसे लिखित विधन की रचना की जाय, जिससे उनकी रोग–निरोधक प्रणाली इतनी ताकतवर

हो सके कि वे वातावरण में दुराचार के कारण उत्पत्र हुए विषाणुओं और जीवाणुओं से प्रभावित न हों तथा रोगमुत्त रहें। और उसी समय नागरिकों को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रोगों से मुत्ति दिलाने के लिए विभित्र शास्त्रों तथा नियमों का विधन किया गया।

इसी महासभा में विभित्र संहिताओं को अधिनियमित, अंगीकृत और आत्मार्पित किया गया और यह माना गया कि चूंकि रोगग्रस्त होने से ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चार पुरुषार्थों का नियमपूर्वक अनुष्ठान नहीं करता, इसलिए सबसे पहले नागरिकों को रोगमुक्त किया जाय फलतः आयुर्वेद–शास्त्र का जन्म हुआ।

इस महासभा में भाग लेनेवाले नारिकों को तथा जिन लोगों ने विभित्र संहिताओं की परिकल्पना और रचना की, उन्हें ब्राह्मण कहा गया क्योंकि वे सभी समस्त मानव जाति पर उत्प प्राकृतिक एवं सामाजिक संकट के निवारण के लिए संकल्पबद्ध हुए थे। क्योंकि उनके अंतर में सर्वव्यापी करुणा का अनंत प्रवाह उच्छल हो रहा था क्योंकि उन्होने मानव–मात्रा ही नही, समस्त प्रकृति की पीड़ा एवं वेदना को अपनी पीड़ा एवं वेदना के रूप में अनुभव किया था, क्योंकि वे संकट बाह्य प्रकृति एवं प्राणिमात्र की आंतर–प्रकृति के कल्याण के लिए अपने अनंतपफलदायी ज्ञान का दान करने के लिए तत्पर हुए थे क्योंकि उन्होंने मानव समाज के रोग के रूप में उत्प अपराधियों को दंडित करने के लिए धर्मसूत्राों एवं अन्य संहिताओं की रचना की एवं उनका सम्यक प्रवर्तन सुनिश्चित किया था, जिसके बाद मनुष्य की रोग–निरोध्क प्रणाली के साथ–साथ समाज की भी रोग निरोधक प्रणाली अर्थात् राज्य एवं उसके प्रशासन का शत्तिफशाली एवं मानव कल्याणकारी संस्था के रूप में उदय हुआ।

और, इसीलिए उन्हें ब्राह्मण कहा गया था। ऋग्वेद में सर्वाध्कि सूत्तफ अग्नि के लिए समर्पित हैं और प्रसिद्ध अग्निसूत्तफ में अग्नि को 'पुरोहितम्' कहा गया है। पुरोहित, अर्थात् जो आगे प्रतिष्ठित है– मार्गदर्शक है। अग्नि तो देवता थे, किन्तु, मानव समाज में पुरोहित शब्द ब्राह्मण के लिए प्रयोग किया गया। क्योंकि इन्ही लोगों ने सामाजिक संकट के समय आगे आकर चिंतन–मनन किया था तथा नियम संहिताओं की रचना की थी। क्योंकि वे अग्नि की तरह प्रदीप्त और आलोक–संप थे। यह घटना–क्रम त्रोता युग के प्ररंभ का था, जब समाज के एक चौथाई लोगों

में धर्म, अर्थात् प्रचलित कानूनों और संविधन के उल्लंघन की अनर्थकारी प्रवृत्ति पैदा होनी शुरू हुई थी।

हमारी परंपरा, त्रोता युग के बाद ऐसे युग का आख्यान करती है जिसकी आधी जनसंख्या में कानून–नियमों का उल्लंघन करने की मनोवृत्ति पैदा हो जाती है। उस युग को द्वापर कहा गया। द्वापर का अंत अत्यंत भीषण एवं त्रासद सामाजिक व्यवस्था के उदय का काल होता है। इसी द्वापर के अंत में दुर्योध्न, कंस, दंतवक्र, और जरासंध जैसे जन–विरोधी और दंभी शासक हुए जिनका अंत महाभारत महायुद्ध के अंत के साथ ही हुआ। इस युग के बाद हुआ कलियुग का प्रारंभ जिसका महत्त्वपूर्ण लक्षण है – तीन चौथाई नागरिकों में कानून के उल्लंघन की प्रवृत्ति और अधार्मिक आचरण की आदत का उत्पत्र होना।

हम, इसी कलियुग की प्रारंभिक सह ाब्दियों के साक्षी बनने के लिए अभिशप्त हैं।

इस कालखंड का मूल लक्षण रहा है – समाज की नेतृत्व–हीनता अथवा विकृत नेतृत्व से ग्रस्त समाज, और जिस समाज के तीन चौथाई नागरिक कानून का उल्लंघन करने की मनोवृत्ति से ग्रस्त हों, इसका मतलब ही है कि वह समाज पतनशील है। यद्यपि यह पतन एक नये सर्वांगपूर्ण समाज के उदय का पूर्वाधार बनेगा। फिर भी, जिस सीमित कालखंड में, सीमित दृष्टि के साथ, हम इसकी समीक्षा कर रहे हैं – उसमें यह पतन ही दिखायी दे रहा है। सुख सिर्फ इस बात का है कि इस घने त्रासद अंध्कार के बाद, सूर्य की स्वर्णिम किरणों से युत्तफ सुंदर प्रभात, हमारी आकुल प्रतीक्षा कर रहा है।

न जाने कितने हजार वर्षों से प्रारंभ हुई हमारे राष्ट्र की सामाजिक–यात्रा आज एक अत्यंत संकट पड़ाव पर ठहरी–सी प्रतीत हो रही है। इस लंबी सामाजिक–यात्रा के अनेक विश्राम स्थलों पर हमने नियति के साथ अनेक वादे किए वादे करते चले गए। किन्तु, उन वादों की समीक्षा, उनका मूल्यांकन हमने नहीं किया। अपना पुनर्मूल्यांकन न करनेवाले व्यत्तिफ और समाज, दोनों ही पतन के लिए अभिशप्त होते हैं। पतन और विकृति नियति बन जाती है उनकी। हमारे सांस्कृतिक इतिहास में वर्णित त्रोतायुग के प्रारंभ में उत्पत्र वर्ण व्यवस्था का पुनर्मूल्यांकन करने में हमने चूक की। यद्यपि छोटे वर्गों और व्यत्तिफयों के स्तर पर यह पुनर्मूल्यांकन होता रहा है, परंतु सामूहिक

स्तर पर नहीं । एक आत्मगौरव–विहीन वर्ग तथा उसकी समर्थक शासन–व्यवस्था, विकृत वर्ण व्यवस्था को संपोषित करती रही। यह वर्ग, भारतीय समाज की जाति पर आधरित व्यवस्था का शीर्ष और सर्वाधिक सम्मानित होने का दावा करता रहा। प्राचीन और मध्यकाल में भी इस सोपानक्रमिक समाज–व्यवस्था का शीर्ष होने का दावा करनेवाले ब्राह्मणों ने गांव–गांव तक अपना नैतिक–नेतृत्व बनाए रखा था। किंतु बाद में, यह नैतिक–नेतृत्व विलुप्त होता चला गया तथा आर्थिक और राजनीतिक नेतृत्व के बल पर, इस नैतिक–नेतृत्व को भी स्वीकृत कराने का प्रयास किया जाने लगा। यहीं से वर्ण व्यवस्था में दुर्गंध युत्त विकास पैदा होना शुरू हुआ।

मानवीय समाज के विकास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राज्यविहीन समाज–व्यवस्था अर्थात् सत्ययुग के बाद विकसित हुए विभित्र वर्गों को नेतृत्व की आवश्यकता हुई और आज भी है। क्योंकि बौद्धिक एवं अन्य योग्यताओं में असामानता उत्प   होने पर नेता और उसका अनुगामी वर्ग पैदा होता है। समाज में इस प्रकार के संबंधों का अस्तित्व इस बात को प्रमाणित करता है कि सभी नागरिकों की व्यक्तित्व–व्यवस्था का विकास समान स्तर पर नहीं हो रहा है। व्यत्तिफयों के समान विकास में कहीं न कहीं अवरोध उत्पत्र हो गया है।

इस देश में जिन लोगों का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वे समाज में सभी नागरिकों के समान विकास का अवसर उपलब्ध होने की परिस्थितियों का निर्माण करें – उन्हें ब्राह्मण कहा गया। क्योंकि हमने इस सार्वभौम सत्य का साक्षात्कार किया था कि समष्टि की मुत्तिफ के बिना व्यत्तिगत मुत्तिफ या मोक्ष श्रेयस्कर नहीं है। और इसीलिए, सार्वभौम विजय के आलोक से प्रदीप्त, सन्यासी विवेकानंद ने 1897 में भगवान् रामकृष्ण के मंदिर–निर्माण के लिए संकलित ध्नराशि को, बंगाल के अकाल पीड़ितों में वितरित करते हुए, सिंह–गर्जन किया था कि फ्गुरु के प्रति किए गये अपराध के लिए मैं हजारों साल तक नरक–यातना सहने के लिए तैयार रहूंगा, किंतु मनुष्य में बसे हुए ईश्वर को तड़प कर मरते हुए मैं नहीं देख सकता।

एक राष्ट्र के रूप में, समष्टि–मुत्ति की उपासना करनेवाले हम भारत के लोगों ने, प्रत्येक मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक प्राणवान् वस्तु ही नहीं, जड़ जगत् के भी कण–कण में ईश्वर के परम चैतन्य और आलोक का दर्शन किया था। आज जरूरत है उन सर्वत्यागी संन्यासी नागरिकों की, जो

मातृभूमि और उसकी संतानों की रक्षा के लिए जीवन के अंतिम क्षणों में भी रामप्रसाद बिस्मिल, खुदीराम बोस की तरह यह कह सकें कि 'यह शरीर तो खत्म होने जा रहा है, लेकिन मैं मातृभूमि पर अपने आपको पिफर से बलिदान करने के लिए दूसरा जन्म ही नहीं, हजारों जन्म लेता रहूंगा।' जो इस देश की उन करोड़ों माताओं को स्वस्थ, बलिष्ठ और प्रतिभाशालिनी बनाने के लिए आगे आएँ, जिन्हें दिन भर हाड़तोड़ मेहनत के बाद पूरी मजदूरी तक नहीं दी जाती और जिनके स्तनों का दूध् अपने शिशुओं को पिलाए बिना ही सूख जाता है। ऐसे ब्राह्मणों की जरूरत है आज, जो करोड़ों मजदूरों के साथ भ्रष्टाचारियों द्वारा किए जा रहे मानवाधिकारों के उल्लंघन के खिलापफ सीना तान कर खड़े हो जॉय और उन्हें बता दें कि 'हम भारत के लोगों ने, अपने संविधन में, मानव की गरिमा को अक्षुण्ण रखने और सभी नागरिकों को सामाजिक, राजनीतिक न्याय के साथ–साथ आर्थिक न्याय भी दिलाने का संकल्प कर रखा है। इसलिए, शोषण अब और नहीं चल सकता। जो खुद बेघर हों, लेकिन देश के करोड़ों बेघर लोगों के लिए घर बनाने की परिस्थितियां पैदा करने की ताकत रखते हो! जो खुद तो कबीर की तरह मजदूरी करके जीवन बिताते हों, मगर देश के लाखों बाल–मजदूरों का स्वर्णिम बचपन छीननेवाले देशद्रोहियों के लिए खतरा बन सकें। जो महामात्य चाणक्य की उस प्रशासनिक–नैतिकता को पिफर से प्रतिष्ठापित करे सकें, जिसमें उन्होंने यूनान के राजदूत मेगस्थनीज से बात करते समय, राज्य सरकार द्वारा दिए गए लैंप को बुझाते हुए, और, अपना व्यत्तिफगत लैंप जलाते हुए कहा था कि फ्भारत में सरकारी–सेवक, निजी–कार्यों के लिए सरकार द्वारा दी गयी सुविधओं का इस्तेमाल नहीं किया करते। जो राज्य की सड़के बनाने के लिए आवंटित रुपयों से अपनी अट्टालिकाएं बनानेवालों के लिए कानून का डर पैदा कर सकें। जो दलितों के लिए इंदिरा आवास की जगह अपना शॅपिंग कांप्लेक्स बनानेवालों में कानूनी–सजा का खौपफ पैदा कर सकें। जो अस्पतालों में गरीबों के लिए एक्सपायर्ड और नकली दवाओं की खरीद करनेवालों को यह अच्छी तरह समझा सकें कि 'बस, अब यह सब कुछ और नहीं चलनेवाला।' जो भारत के स्वर्णिम इतिहास की रचना करनेवाले माहमात्य चाणक्य–कौटिल्य, महात्मा बु(, सम्राट् अशोक, सम्राट् चंद्रगुप्त और हर्ष के नाम पर होटलों और रेस्टोरेंटों का नाम रखने की हिमाकत करनेवालों को संवैधनिक और कानूनी रूप से यह बता सकें कि इस देश में, राष्ट्र को गरिमा मंडित करनेवाले महापुरुषों के नाम पर होटलों, रेस्टोरेंटों का नाम नहीं रखा जा सकता। जो नालंदा व

तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों की शिक्षण–परंपरा को पिफर से प्रारंभ कर सकें, जहां से ऐसे देशभत्तफ सरकारी–सेवक, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, पत्राकार और चिकित्सक पैदा किए जा सकें, जो भारत को पिफर से विश्वगुरु के रूप में स्थापित कर सकें।

आज पुनः ऐसे मनीषियों की आवश्यकता है, जो पिफर से अंगिरा, जमदग्नि, वशिष्ठ, सांकृत्य की तरह महासभा का आयोजन करें और इस रोगग्रस्त समाज को नीरोग, अपराध्–मुत्तफ, बलशाली और समता पर आधरित बनाने के लिए संहिताओं और नियमों की रचना करें।

और जो अपने को ब्राह्मण कहते और कहलवाते हुए यह सब करने का दम नहीं रखते है, उन्हें 'ब्रह्मण पदनामों' से मुत्तफ हो जाने, और मुत्तफ कर देने का भी, समय आ गया है। चूंकि हमारी समाज व्यवस्था का नेतृत्व हजारों सालों से 'ब्राह्मण–पदनामधरियों' द्वारा किया जाता रहा है, इसलिए समाज की वर्तमान दुर्दशा के लिए जिम्मेदार इन 'ब्राह्मण–पदनामधरियों' को नैतिकता के आधर पर स्वतः अपने पदनाम से इस्तीपफा दे देना चाहिए। क्योंकि आनेवाले वत्तफ में, लोगों की आत्मा की परीक्षा होनी है। ऐसे समय में मौसमी और पाखंडी नेतृत्व देनेवाले लोग खत्म होंगे। जो देशभत्तफ डटकर मुकाबला करेगा, वही नागरिकों के प्रेम और ध्न्यवाद का पात्रा बनेगा। आनेवाला वत्तफ उसे ही ब्राह्मण कह कर सम्मानित करेगा।

जो देख सकते हैं वे देख रहे हैं कि हिंसा, द्वेष, सामाजिक और नैतिक विकारों से पीड़ित विश्व, अमर भारत की ओर आशा और विश्वास से देख रहा है तथा 21वीं शताब्दी, भारत के विश्वगुरु के रूप में पुनः प्रतिष्ठा की शताब्दी बनने का गौरव हासिल करने जा रही है। इस 21वीं शताब्दी में, हजारों पाखंडी ब्राह्मणों की तुलना में उस एक दलित युवा को सार्वभौम सम्मान मिलोगा, जो बिहार के भोजपुर जिले के पफुलारी गांव के शिवभत्तफ–दलित–युवाओं की तरह, गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करेगा। भारत के कोने–कोने से यह आवाज उठ रही है कि भगवान् आशुतोष शिव हजारों सालों से करोड़ों लोगों द्वारा जल चढ़ाए जाने के बावजूद अतृप्त हैं, क्योंकि इस देश के असंख्य पाखंडी, ध्र्म और पूजा–अर्चना के नाम पर, लंबे समय से भारतमाता के करोड़ों दलित–पुत्राों को शिव का अभिषेक करने से वंचित करने का महापाप करते आ रहे हैं।